ISSN: 2456-947X, Vol. II, Issue. I, September-2018

अनघ

(An International Journal of Hindi Language, Literature and Culture)

Journal Homepage: http://cphfs.in/research.php

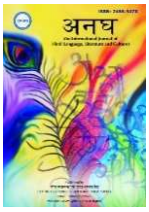

मध्यकालीन समाज और नारी की स्थिति

डॉ. लोकेश कुमार गुप्ता

सहायक प्रोफेसर

माता सुंदरी महिला महाविद्यालय

नई दिल्ली -०२

E-mail: lokeshjnu@gmail.com

शोधसार: मध्यकालीन समय और समाज की नारी की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थिति का आकलन प्रस्तुत करते हुए मध्यकाल में हम स्त्री को वर्चस्वहीन होते हुए परिलक्षित करते हैं। मध्यकालीन समाज की उच्चकुलीन नारी मानसिक रूप से शोषित और प्रताड़ित थी। वह मात्र मातृ और कामिनी रूप में पहचान रखती थी। उच्छृंखला को समाज बहिस्कृत किया जाता था अथवा हत्या तथा आत्म हत्या के दौर से गुजरना होता था।

I. प्रस्तावना

भारतीय अतीत के मध्यकाल को सामंतकाल के नाम से भी अभिहित किया जाता रहा है। सामंती मानसिकता के कर्णधार रक्षक इस सामाजिक व्यवस्था की संरचना करते हैं। प्रभुतासम्पन्न इस समाज व्यवस्था में "व्यक्ति नहीं होता, सिर्फ़ संस्था और व्यवस्था होती है। वह व्यक्तित्व के संपूर्ण और बेशर्त समर्पण और विलयन पर टिका होता है। प्रजा और सामंत, ग़ुलाम और मालिक, पत्नी और स्वामी-ये सारे रिश्ते संपूर्ण समर्पण पर ही निर्भर होते हैं।"[i] इस प्रभु-व्यवस्था की मानसिकता और संस्थाएँ व्यक्ति पर बलात् अधिकार कर अपने अधीनस्थों का शोषण करते थे। अधीनस्थ नारी और पुरुष दोनों थे। ये समाज के वे मनुष्य थे जो शासनच्युत थे, वर्चस्वविहीन थे, पीड़ित थे, दास थे अर्थात् जो शोषित थे और व्यवस्था के रक्षकों की दृष्टि में जिनकी कोई अस्मिता नहीं थी।

विवेच्यकाल में निम्नवर्गीय शोषित, पीड़ितों में पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को भी इस सामंती व्यवस्था की चक्की में पिसना पड़ता था। इस काल की नारी, चाहे वह अभिजात कुल की हो अर्थात् शासक वर्ग की हो या शासनच्युत वर्ग की, वह दासी थी। इस व्यवस्था में निम्नवर्णीय नारी को घर की चारदीवारी से बाहर निकलने की स्वतंत्रता थी या कह सकते हैं कि उसको अपने परिवार की उदरपूर्ति हेतु पुरुषों के साथ घर से बाहर निकलना पड़ता था। निम्नवर्णीय नारियों का शोषण सामंती समाज की व्यवस्था में होता था लेकिन, वह मात्र कामपुतलिका नहीं थी। सामंतीकाल में शासक वर्ग की और अभिजात वर्ग की नारी की स्थिति चिन्तनीय थी। सामंती समाज में शोषक वर्ग की नारी शोषित थीं इस काल में नारी की स्थिति दयनीय एवं उसका जीवन दुर्वह समस्याओं से ग्रस्त था। आलोच्य काल में सामंती मानसिकता की पोषक, रक्षक, पुरुषसत्ता

एवं पितृसत्ता नारियों के जीवन में बंधनों की शृंखला खड़ी कर देती थी। इस पुरुषसत्तात्मक एवं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के बंधनों की शृंखला को तोड़कर सामंती समाज की नारी का बाहर निकलना असंभव था। उसके जीवन में इतने बंधन थे कि वह बंधनों की स्वामिनी लगती थी, है।

इस काल में नारियों के जीवन पर कब, किसका, किस प्रकार का अधिकार रहेगा इस हेतु सामंती मानसिकता सुप्रसिद्ध न्यायविद मनु के द्वारा निर्धारित नीति का पालन करती थी। मनु के सिद्धांतों के अनुसार, ''लड़की द्वारा, युवती द्वारा या वयोवृद्ध महिला द्वारा भी, अपने घर तक में, कुछ भी स्वतंत्रतापूर्वक निश्चय नहीं किया जाना चाहिये। उसे अपने को अपने पिता, पति या पुत्रों से अलग करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, ऐसा करके वह दोनों (पितृकुल और पतिकुल) परिवारों को निन्दनीय बनाएगी"[ii] और फिर यह भी कि, ''पिता रक्षिते कौमारेभर्ता रक्षित यौवने, रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातंत्र्य महर्ति।"[iii] अर्थात् ''पिता बाल्यावस्था में, उसका पति यौवनावस्था में और उसके पुत्र वृद्धावस्था में उसकी रक्षा करते हैं, नारी कभी भी स्वतंत्रता के योग्य नहीं।''

इस प्रकार सामंती मानसिकता की पुरुषवर्गीय सत्ता नारी पर मनु । नीति को अक्षरशः लागू कर, उसे व्यवस्था के बंधनों में जकड़कर पराधीन बनाकर रखती थी। इस प्रतिबंधात्मक व्यवस्था में नारी की स्वतंत्रता और स्वच्छंदता-अभिजात कुल की नारी-प्रायः समाप्त हो गयी थी। मध्ययुगीन समाज में नारी की स्थिति के संदर्भ में डी । डी । कोशाम्बी ने सम्मति स्वरूप कहा है कि, ''मध्ययुग से मेरा तात्पर्य भारत में निजी संपत्ति के उदय, दास-प्रथा और सामंतवाद तक की पूरी कालावधि से है। जहाँ तक इस युग में नारी की स्थिति का सवाल है, इसका प्रारंभ ही मातृसत्ता की समाप्ति और मनुस्मृति में उल्लेखित नारी की चिर-पराधीनता के आधारभूत विधान से होता है। इसका परवर्ती विकास भगवद्गीता में कृष्ण के इस कथन की मान्यता तक होता है जिसमें स्त्रियों को वर्णव्यवस्था के निम्नतम वर्णों, वैश्य और शूद्र के साथ ही पाप योनि वाले वर्ण में रखा गया है।" [iv]

II. नारी अस्तित्व एवं अस्मिता (साम्राज्ञी से दासी)

मध्यकालीन समाज में नारी की स्थिति दयनीय थी। तत्कालीन समाज में नारी को राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में कोई अधिकार प्राप्त नहीं था और ना ही, तत्कालीन शासन व्यवस्था में नारी की कोई अस्मिता थी। नारी की यह स्थिति तब है जब मध्यकाल के सामंती वातावरण के केन्द्र में भार्या और भूमि थी। उस काल में नारी को अपहृत कर उसे बंदी बनाया जाता था। इस संदर्भ में सावित्री सिन्हा का मानना है, ''युद्ध में जय-पराजय के निर्णय के पश्चात् पराजित जाति की स्त्रियों की अकल्पनीय दुर्दशा होती है। विदेशियों के युद्धों में ही नहीं अपितु राज्यों के पारस्परिक झगड़ों के फलस्वरूप भी स्त्रियाँ विजयी राज्य के प्रासादों की शोभा बढ़ाने लगी थी। तातारों तथा मुग़लों के आक्रमण की भयावहता में तत्कालीन नारी का करुण चीत्कार कल्पना के कर्णकुहरों में छा जाता है। सैनिक जीवन का अनुशासन उच्छृंखलता प्रदर्शन का पूर्ण अवसर पाकर अपनी संपूर्ण विभीषिका के साथ जीवन पर छा जाता है। उस समय नारी तथा कन्या-अपहरण द्वारा सैनिकों की चिरतृषित कामनाओं की अभिव्यक्ति का साधन प्राप्त था। अराजकतापूर्ण तथा उच्छृंखल राजनीति तथा शासन से स्त्रियों की रक्षा के लिए और उनके जीवन को सुरक्षित बनाने के लिए आवश्यक था कि उसे घर की दीवारों में बंदी बनाकर रखा जाता। इस प्रकार, राजनीतिक परिस्थितियाँ नारी के जीवन क्षेत्र को संकुचित बनाने में प्रधान कारण बनी।" [v] मध्यकालीन मानसिकता का सामंत नारी को अपहृत कर; उसको राजमहल की चारदीवारी में अर्गलाबद्ध रखता था। उस मानसिकता की दृष्टि में नारी का अस्तित्व मात्र वासना तृप्ति के साधन के रूप में था। नारी को छल या बल से सामंती पुरुष के द्वारा अस्मिताहीन किया जाता था।

मध्यकालीन सामंती व्यवस्था में नारी की सुंदरता उसके लिए अभिशाप बन गई। सामंत जिस वीरता और अधैर्यता के साथ नारी का हरण और वरण करते थे, उसको देखकर ऐसा लगता था कि उस व्यवस्था में नारी उच्च पद पर प्रतिष्ठित होगी; लेकिन तत्कालीन व्यवस्था में नारी के प्रति सामंत पक्ष का रवैया सर्वथा उपभोगपरक था। सामंती प्रेम की शिकार इन नारियों का संग्रहण विशाल हरम की शोभा बढाने के लिए किया जाता था। तत्काल में नारी का अस्तित्व और अस्मिता पुरुष सत्ता के समक्ष 'जो पद पर चढ़ गई,

चाँदनी फीकी वह लगती है'[vi] के सदृश थी। आभिजात्य वर्ग में नारी प्रायः देह मात्र थी। मध्यकालीन विशाल अंतःपुरों के संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा है, ''सामंती नैतिकता नारी और भूमि को एक दृष्टि से देखती थी। वहाँ 'माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः' का सिद्धांत 'वीर भोग्या वसुंधरा' में बदल गया। सामंत का राज्य बहुत बड़ा उसकी सेना बहुत बड़ी तो उसका अंतःपुर भी बहुत बड़ा।"[vii] आईन-ए-अकबरी में हरम में नारियों की स्थिति का वर्णन करते हुए नारियों के रहन-सहन आदि में व्याप्त भेदभाव को भी व्यक्त किया है। शासकवर्ग रानियों के अनेक वर्ग बनाकर रखते थे ताकि नारियाँ कभी संगठित होकर-निज अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संगठित होकर- विद्रोही ना बने। अकबर और उनके परवर्ती शासकों के अंतःपुर की स्थिति के संदर्भ में आईन ।ए ।अकबरी के इसी साक्ष्य के आधार पर पी । एन । ओझा लिखते हैं, ''अकबर के हरम में इस प्रकार विभिन्न जातियों, वंशों और राष्ट्रीयताओं की पाँच हज़ार से ज़्यादा महिलाएँ थीं ओर ऐसा कोई सबूत नहीं मिलता जिससे विदित हो कि जहाँगीर एवं शाहजहाँ के समय में उनकी संख्या में कमी हुई हो।"[viii] इन हरमों में नारियों की बढ़ती संख्या नारियों के अस्तित्व और अस्मिता को धूमिल करती है। जैसे-जैसे हरम में नारियों की संख्या बढती जाती है, वैसे-वैसे इस व्यवस्था के रक्षकों की दृष्टि में नारी का मूल्य, अस्मिता और अस्तित्व नगण्य होता जाता था। सामंत के समक्ष नारी का अस्तित्व मात्र मनोरंजन के साधन के[ix] रूप में था। हरम व्यवस्था पर केवल बादशाहों अथवा सम्राटों का ही एकाधिकार नहीं था। इस युग में हरम व्यवस्था के प्रसार और उसकी लोकप्रियता के संदर्भ में पी । एन । ओझा कहते हैं, ''हरम पर केवल शहंशाह का एकाधिकार नहीं था। दूसरी ओर, प्रायः सभी सरदार, जिनमें हिन्दू भी होते थे; उनके अपने-अपने हरम होते थे, जो साधारणतः शाही हरम के ढाँचे के तर्ज पर ही होते थे। हरम के जीवन ने शासकों और उसी तरह सरदारों के जीवन पर अनैतिक प्रभाव डाला होगा।" मध्ययुगीन सामंत सरदारों की हरम व्यवस्था के संदर्भ में जहाँगीर्स इंडिया में पलसर्ट ने व्यक्त किया है, ''नियमतः किसी सरदार की तीन या चार पत्नियाँ होती हैं जो बड़े लोगों की बेटियाँ होती हैं पर सबसे वरिष्ठ पत्नी को सबसे ज़्यादा सम्मान मिलता हैं। सभी ऊँची दीवारों से घिरे एक घेरे में रहती हैं जिसे महल कहा जाता है और जिसमें तालाब और बगीचे होते हैं। हर पत्नी का अपने लिए अपना कमरा अलग होता है जहाँ वह और उसके दास और दासियाँ रहती हैं जिनकी संख्या दस या बीस या सौ भी हो सकती है। जो उस पत्नी के प्रति पति के आकर्षण पर निर्भर करता है। हर पत्नी को अपने खर्चे के लिए नियमित मासिक भत्ता मिलता है।"[x] सामंतों के हरमों के संदर्भ में मनूसी ने स्टोरियो-2 में सम्मति दी है, "जहाँ तक अपने हरम की औरतों पर कड़ी निगरानी रखने का सवाल है, सभी सरदार वे ही तरीक़े इस्तेमाल करते हैं जो शहंशाह किया करते हैं।"[xi] सामंत सरदारों के हरम उनके आमोद-प्रमोद के स्थल थे। पलसर्ट सामंतकालीन सरदारों की हँसी ।खुशी और भोग-विलास से भरे जीवन की चर्चा इस प्रकार करते हैं, ''पति सुनहले मुर्ग़े की भाँति सुनहली मुर्ग़ियों के बीच आधी रात तक या तब तक बैठा रहता है जब तक वासना की अतिशय पूर्ति या शराब का हद से ज़्यादा नशा उसे बिस्तर पर चले जाने को मजबूर ना कर दे।"[xii]

तत्कालीन नारी के जीवन में पत्नीरूप और मातृरूप दोनों ही अवसाद से भरे हुए थे। उनके लिए गृहस्थ जीवन किसी बंदीगृह से कम नहीं था।[xiii] मध्यकाल में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' सदृश उक्तियाँ निरर्थक हो गई थी। अभिजातकुल की नारी साम्राज्ञी रहते हुए भी दासी के सदृश थी। तत्कालीन समाज में नारियों की इस दशा को देखकर उमा शुक्ल ने सम्मति दी है, ''शोक से कहना पड़ता है कि यह समय देर तक न रहा। स्त्री के दिव्य गुण धीरे ।धीरे उसके अवगुण बनने लगे। साम्राज्ञी से वह धीरे-धीरे आश्रिता बन गई। जो स्त्रियाँ वैदिक युग में धर्म और समाज का प्राण थीं, उन्हें श्रुति का पाठ करने के अयोग्य घोषित किया गया। वैदिक युग का दृष्टिकोण जो स्त्री के प्रति दिव्य कल्पनाओं तथा पुनीत भावनाओं से परिवेष्टित था अब पूर्णतया बदल चुका था। वह युग तो जैसे स्त्रियों के गिरावट का युग था। उनके आत्मिक तथा मानसिक विकास के द्वारों पर ताले लगा दिये। इनकी साहित्यिक उन्नति के मार्ग पर अनेक प्रतिबंध लगा दिये। 'स्त्री शूद्रो नाधीयताम् - जैसे वाक्य रचकर उसे शूद्र की कोटि में रख दिया। स्त्री को विवाह संस्कार के अतिरिक्त और सभी संस्कारों से वंचित कर दिया गया।"[xiv]

मध्यकालीन सामंती संरचना की पुरुष सत्ता ने नारियों के लिए शृंखला की ऐसी कड़ियाँ निर्मित की जिनमें-विशेषकर अभिजात वर्ग की नारी के लिए, वह केवल सामंती समाज के व्यवस्थापकों के लिए विलास-क्रीडा का साधन थी। तत्कालीन पुरोहितवादी संस्कृति ने तो नारी की अस्मिता को मनु के इस कथन का आश्रय लेकर वस्तु रूप प्रदान किया था, ''तीस वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की लड़की से, जो उसे पसंद आए, विवाह करेगा और चौबीस वर्ष का पुरुष आठ वर्ष की लड़की से, यदि उसे अपने कर्तव्यों के पालन में बाधा पहुँचती है तो उसे अवश्य ही जल्द विवाह कर लेना चाहिए।"[xv] सामंती समाज में नारी का अस्तित्व, अस्मिता व्यवस्था की पुरुष सत्ता के समक्ष मात्र उपभोग्य देह बनकर रह गई।

तत्कालीन समाज में नारी को जन्मावसर से ही पुरुष मानसिकता द्वारा अस्तित्वहीन करने की कोशिश की जाती थी। पितृसत्तात्मक समाज में लड़की का जन्म अपशकुन एवं अभिशाप समझा जाता था। इस समाज में पुत्रों की चाहत होती है, पुत्रियों की नहीं। सामंती व्यवस्था पुरुषकेंद्रित होती है नारीकेंद्रित नहीं। इस व्यवस्था में कन्या के जन्म को अपशकुन मानने के कुछ भी कारण हो सकता है। विदेशी आक्रांताओं का प्रभाव भी हो सकता है तो सिद्धों एवं तांत्रिकों की पंचमकारी साधना भी। शायद ये ही कारण मुख्य रहे उस व्यवस्था में लड़की को पितृसत्तात्मक द्वारा अस्तित्वहीन करने के। उषारानी ने इस संदर्भ में व्यक्त किया है, ''राजपूत पुत्री का जन्म होने पर बहुधा उसे मार देते थे।"[xvi]

मध्यकालीन व्यवस्था की पितृसत्ता लड़की को एक भार के रूप में देखती थी। लड़की का विवाह अल्पायु में कर दिया जाता था। हिन्दुओं में मध्यकाल में लड़कियों के अल्पायु में विवाह के संदर्भ में पी ।एन । ओझा पल्सर्ट की सम्मति के आधार पर लिखते हैं, ''लड़कियों की उम्र नौ या दस वर्ष और लड़कों की उम्र सोलह या सत्रह वर्ष होने के पूर्व ही उनका विवाह हो जाता था।"[xvii] मध्यकालीन समाज में विवाह के मामले में लड़के-लड़कियों की राय नहीं ली जाती थी और अपने माता-पिता के निर्णय उनके लिए बराबर बंधनकारी होते थे .....पर लड़की की, जो सामान्यतया विवाह के समय आठ या दस वर्ष की होती थी, राय लेना स्वभावतः बेमतलब होता था।"[xviii] इस प्रकार नारी की अस्मिता या उपस्थिति को ताक पर रखकर उसका अबोध अवस्था में मध्यकालीन समाज की पितृसत्ताक मानसिकता द्वारा उसे परिणयसूत्र में बाँध दिया जाता था। तत्कालीन मानसिकता के समक्ष बालविवाह का चाहे कोई भी कारण रहा हो, लेकिन सबसे बड़ा कारण था लड़की को उसका आत्मबोध होने नहीं देना।

नारी की अस्मिता और अस्तित्व को केन्द्र में रखकर ही मध्ययुगीन मानसिकता के द्वारा नारी को बंधनों में बँधने के लिए विवश किया जाता था। व्यवस्था के संरक्षक नारियों के लिए-विशेषतः अभिजात कुल की नारी के लिए पर्दा प्रथा की व्यवस्था करते थे। इस संदर्भ में पी । एन । ओझा कहते हैं, ''साधरणतः मुस्लिम महिलाएँ और कुछ वर्गों की हिन्दू महिलाएँ भी पर्दा करती थीं, विशेषतः वे जो ऊँचे और समृद्ध परिवारों की होती थी। ग़रीब महिलाएँ, ख़ासकर ग्रामीण क्षेत्रों में, जिन्हें अपनी आजीविका के लिए घर से बाहर निकलना पड़ता था, समाज के उच्चवर्गों की अपनी बहनों की तरह कड़ाई से पर्दा के नियमों का पालन न कर सकती थीं और न घर की चारदीवारी के भीतर ही रह सकती थीं। किसान महिलाओं का विशाल समुदाय किसी क़िस्म के पर्दा या कोई खास घूँघट में न रहता था और न ही वे अपने को अपने घर के भीतर बंद रख सकती थी।"[xix] पर्दा प्रथा के कारण उत्तर भारतीय सामंती समाज एवं संस्कृति में तत्कालीन उच्चवर्गों की हिन्दू महिलाओं का स्वतंत्रतापूर्वक चलना-फिरना भी नहीं होता था।[xx] मध्यकालीन मेवाड़ प्रदेश में पर्दा प्रथा के संदर्भ में धर्मपाल शर्मा की सम्मति है कि, ''ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्व में पर्दाप्रथा मेवाड़ में नहीं थी। रानियाँ सक्रिय रूप से सामाजिक एवं धार्मिक आयोजन में शरीक होती थीं। युद्धकाल में आंतरिक व्यवस्था सुचारु रूप से चलाने में सहयोग देती थी। आपातकाल एवं वन विचरण में सहभागिता का निर्वाह करती थी। राज्याभिषेक के साथ राजगद्दी पर बैठती थी। राजपुरोहित एवं अन्य वरिष्ठ सरदारों के साथ आवश्यक मंत्रणा एवं नीति निर्धारण करती थी।"[xxi]

परवर्तीकाल में मुगलों के आगमन के बाद पर्दा प्रथा ने सशक्त रूप ले लिया था। जिस कारण समाज में नारियों को निज अस्मिता को पर्दे में रखना पड़ता था। राजघराने की रानियों की जनसाधारण तक पहुँच नहीं रहती थी। राजघराने की इन नारियों के

जनसाधारण से विलगाव के प्रमाण 'बीकानेर री ख्यात' में मिलते हैं। ख्यात में यह वर्णित है कि ''राजपरिवार की स्त्रियाँ तो जनानी ड्योढ़ी में ही स्वतंत्र रूप से विचरण कर सकती थीं। अपने निजी चाकरों के सिवाय वे परपुरुष का चेहरा भी नहीं देखती थीं तथा जब कभी बाहर जाती थीं तो पालकी या बंद गाड़ी का प्रयोग करती थीं; राजमाताएँ जनानी ड्योढ़ी एवं राज्य-संचालन व मंत्रणा के लिए राज्यमंत्रियों या अधिकारियों से अवश्य मिलती थी। किन्तु उनकी यह कार्यविधि राजमहल तक ही सीमित रहती थी, जनसाधारण की उन तक पहुँच नहीं थी।"[xxii] मध्ययुगीन समाज में पर्दाप्रथा इतनी सशक्त रूप में प्रचलित थी कि राजघराने की औरतों को अपने पति से इतर प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति से पर्दा करना पड़ता था। उस व्यवस्था में नारी के अस्तित्व की स्थिति यह थी कि नारी को अपने युवा पुत्र से भी लगभग पर्दा करना पड़ता था। पुत्र के समक्ष माँ को संवादातिरेक की स्वतंत्रता नहीं थी। प्रेम ऐंग्रिस इस सदर्भ में लिखते हैं, ''राजपूज स्त्रियाँ पर्दा बहुत रखती थीं। इनको यहाँ समीप के रिश्तेदारों से भी पर्दा कराया जाता था। ठाकुरों और सरदारों में, जिनके यहाँ बाँदियां काम करने के लिए होती थीं उनके यहाँ पूरा पर्दा रहता था।"[xxiii]

मध्यकालीन मानसिकता ने बहुपत्नी प्रथा के द्वारा भी नारी की अस्मिता और अस्तित्व को नगण्य बनाने का प्रयास किया जाता था। बहुविवाह प्रथा के संदर्भ में उषाकँवर राठौड़ की सम्मति है, "बहु विवाह इस युग की एक विशेषता है। राजपूतों और वैश्यों में इसका प्रचलन बहुत देखा गया है।"[xxiv] उस समय के कई नरेशों की पत्नियों की संख्या का औसत नौ से कदापि कम नहीं था।[xxv] करेरी मध्ययुगीन समाज में राजपूत शासकों में बहुविवाह प्रथा के संदर्भ में बताता है, "अन्य जनजातियों को सिर्फ़ एक पत्नी रखने की अनुमति है जबकि राजपूत, स्वतंत्र राजा होने की वजह से, जितनी भी चाहे पत्नियाँ रख सकते हैं।"[xxvi] राजा के जीवन में एक से अधिक पत्नियाँ रखने के कई कारण हो सकते हैं। "इसका एक कारण तो पुत्र या संतान रहता था एवं दूसरा ठाकुरों और सामंतों के भोगविलास का जीवन में अनुकरण करने की होड़ रही।"[xxvii] राजमहलों में अनेक रानियां होने के कारण राजा की निगाह में रानियों की अस्मिता और अस्तित्व मात्र शरीर के रूप में रहता था। इनके अंतःस्थल कामिनियों से सुसज्जित रहते थे। नारी की कोई स्वसत्ता नहीं थी। बहुविवाह प्रथा के कारण रानियों का अभिजन समाज में कोई मूल्य नहीं होता था। राजमाता या महारानी कहलाने वाली नारी की स्थिति और भी बदतर होती थी। एक ओर तो सामंती व्यवस्था इनको ऐसे उच्च गरिमामय पद पर आसीन करती थी वहीं दूसरी ओर यह व्यवस्था इनकी अभिव्यक्ति पर लगभग प्रतिबंध लगाकर इनकी अस्मिता को झकझोर डालती थी। राजसत्ता के रक्षक इनको उच्च पद इसलिए प्रदान करते थे कि ये अंतःस्थल की अन्य रानियों पर नियंत्रण रख सकें। साथ ही, समाज व्यवस्था में नारी वर्ग कोई वितंडा या विद्रोह नहीं करे।

मध्यकालीन राजघरानों में नारी के अस्तित्व को नकारने के लिए दहेज प्रथा का भी सहारा लिया जाता था। इस संदर्भ में पी । एन । ओझा लिखते हैं, "ऐसा लगता है कि इस अवधि में विवाह के समय के उपहार, जिनको आमतौर पर बंगाल और उड़ीसा में 'जौतुक' और बिहार आज के उत्तरप्रदेश के कुछ भागों और राजस्थान में 'दहेज' कहा जाता है। व्यापक रूप से प्रचलित और लोकप्रिय थे। इन उपहारों में वैवाहिक पक्षों की सामाजिक स्थिति के अनुसार अंतर होता था। अमीर और खुशहाल वर्गों में इन उपहारों कीमती रत्नों और धातुओं से अलंकृत उपस्करों, ज़मीन-जायदाद की अन्य चीजें और जीवन की आवश्यक वस्तुएँ शामिल होती थी। मनुसी और करेरी दोनों ने ही हिन्दुओं में दहेजप्रथा के प्रचलन की चर्चा की है।"[xxviii] इन साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि विवाह में पितृपक्ष लड़की के साथ-साथ बहुत दहेज देता था। दहेज में धन-दौलत के साथ दास और दासियाँ भी दिये जाते थे। मध्यकालीन समाज जिसमें सामंतवाद का ह्रास और एक नये प्रकार की पूँजीवादी व्यवस्था का उदय हो रहा था; ऐसी पूँजीवादी व्यवस्था में अस्तित्व दहेज का होता है, नारी का नहीं।

मध्यकालीन सामंती समाज में राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से भी नारी का कोई विशेष स्थान नहीं था। विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, ''सामंती व्यवस्था जहाँ ज़्यादा पुरानी और मज़बूत होगी वहाँ जाति-पाँति के भेदभाव की तरह स्त्री और पुरुष में छोटे-बड़े का भेद भी ज्यादा होगा।"[xxix] तत्कालीन व्यवस्था की राजनीति में नारी दरकिनार थी। उस युग में नारी को लेकर युद्ध तो हो सकते थे,

लेकिन तत्कालीन सामंती मानसिकता कभी भी नारी को सत्तासीन होने नहीं देती थी। यह बात अलग है कि युद्ध आदि के अवसर पर सामंतगणों की अनुपस्थिति में ये रानियाँ राजव्यवस्था के संचालन हेतु कुछ निर्णयात्मक क़दम उठाये; लेकिन रानियों के द्वारा उठाये गये ये क़दम सामंती राजव्यवस्था के अंतर्गत उस सामंती व्यवस्था को और सुदृढ़ता प्रदान करते थे। राजमहलों की महारानी पुरुषसत्ता की रक्षार्थ ही कोई कदम उठाती थीं। ये राजरानियाँ व्यवस्था में हो रहे शोषण से मुक्ति नहीं चाहती थीं, बल्कि वे कुछ ऐसे क़दम उठाती थीं जो कि उन रानियों को सामंती शिक्षण प्रणाली या सामाजिक सामंती परंपराओं से विरासत में प्राप्त हुए थे। विरासत में मिले ये क़दम थे नारियों की अस्मिता को समूल मिटाने वाले होते थे। निदर्शनार्थ-सतीत्व रक्षार्थ जौहर करना।

मध्यकाल में नारी के जन्मावसर से ही उसके अस्तित्व को मिटाने की चेष्टा की जाती थी। सामंती समाज की शिक्षा, बहु विवाह, दहेज प्रथा, हरम प्रथा एवं राजनीति से च्युत कर नारी की अस्मिता को सीमाबद्ध किया जाता रहा। तत्कालीन समाज में नारी जिसको वेदों या पुराणों में शक्तिस्वरूपा दुर्गा, लक्ष्मी या साम्राज्ञी माना गया था; वह इस काल में साम्राज्ञी के पद पर रहते हुए दासी के रूप में परिणत हो गई थी। इनका शारीरिक शोषण से ज़्यादा मानसिक शोषण होता था। इन नारियों को जिस प्रकार पिंजरें में पक्षी को कैद करके रखा जाता है उसी प्रकार कैद करके रखा जाता था।

III. व्यक्ति से वास्तु बनती नारी (रति से कामिनी तक की यात्रा)

मध्यकालीन सामंती मानसिकता नारी को व्यक्ति के रूप में मात्र देह समझती थी। प्रभा खेतान के अनुसार, ''ज़्यादातर लोगों की नजर में स्त्री महज एक देह है।''[xxx] सामंती मानसिकता की व्यवस्था नारी को उपभोग की वस्तु समझती थी। इस सामंती व्यवस्था में नारी उपहार की वस्तु के समान थी। इस संदर्भ में विश्वनाथ त्रिपाठी की सम्मति है, ''मध्यकालीन सामंती समाज में नारी का संपत्ति या धन के रूप में उपभोग होता था। सामंती दृष्टि नारी का पूर्ण रूप नहीं देखती थी। वह नारी को शरीर ही समझती थी।"[xxxi] इस व्यवस्था में नारी शरीर को धन अथवा संपत्ति मानकर, उसको वस्तु के रूप में समझा जाता था। नारी को उपहार में भेंट किया जाता था और ग्रहण किया जाता था। तत्कालीन समाज में नारी को सुंदर मांसल वस्तु के समान माना जाता था और इसी सुंदर वस्तु की प्राप्ति के लिए युद्ध भी किये जाते थे। इस युग में नारियों का अस्तित्व उपभोग्य वस्तु के सदृश था। युद्ध में नारीरूपी वस्तु को पाने के लिए कामातुरों के ढेर लग जाते थे। लेकिन, नारी के वस्तु रूप में परिणत होने के उपरांत सामंती समाज में उसकी अस्मिता का लोप होने लगता था। सामंती मानसिकता की पुरुषसत्ता नारी का उपभोग जिस प्रकार चाहती थी, करती थी। मध्यकालीन सामंती मानसिकता इन विजित नारियों पर क्या-क्या और कितने-कितने अत्याचार करती थी; राजमहलों की हरम व्यवस्था इन सबका वर्णन करती थी। ये सामंत प्रेम के नाम पर नारी के साथ उसी प्रकार का व्यवहार करते थे जिस प्रकार का व्यवहार एक वस्तु के साथ मनोरंजन करते समय किया जाता है।

नारी को उसके पितृसत्ता से ही वस्तु बनाने की प्रक्रिया शुरू हो जाती थी। इसी वजह से बाल्यावस्था से ही नारी की स्वच्छंदता को प्रतिबंधों में रखा जाता था। फिर सामंती मानसिकता की शिक्षा व्यवस्था जो नारी को अस्मिताहीन कर, उसे वस्तु रूप में परिवर्तित करती थी। बाल विवाह का बंधन, तत्पश्चात् सामंती राजघरानों में विवाह। विवाह के पश्चात् सामंती समाज के द्वारा निर्धारित प्रतिबंधों का बढ़ना आदि नारी को व्यक्ति से वस्तु बनने या बनाने को प्रेरित करती थे। अभिजात वर्ग की नारी को वस्तु की तरह आकर्षक दिखाई देने के लिए अपनी सौन्दर्यात्मकता को बरक़रार रखना पड़ता था। यह वस्तुरूपी नारी सौन्दर्य प्रसाधनों के अलावा अलंकारादि के वज़न को वहन करती थी। तत्कालीन सामंती समाज में नारियों को अपनी सौन्दर्यात्मकता बढाने के लिए मासिक अनुदान राशि मिलती थी। इस संदर्भ में डी । लेट का कथन है कि, ''हर पत्नी घरेलू ख़र्च के लिए अपने पति से मासिक अनुदान प्राप्त करती है जैसे कि घर के उपस्कर (फ़र्नीचर) कपड़े-लत्ते, गहने-आभूषण आदि के लिए। ये अनुदान पति के धन और संबद्ध पत्नियों के प्रति उसके प्रेम के अनुपात में भिन्न-भिन्न दिया जाता था।"[xxxii] पलसर्ट की सम्मति इस संदर्भ में इस प्रकार है, ''उसके प्रति पति के

प्रेम के अनुरूप उसे गहने और कपड़े मिलते थे।"[xxxiii] सामंती मानसिकता की पुरुषसत्ता नारी को व्यक्ति से वस्तु बनने हेतु इस प्रकार के बहुत से कार्य करती थी। नारी की स्वच्छंदता, स्वतंत्रता आभूषणों में बँधकर रह जाती थी। यह वस्तुरूपी नारी सामंती समाज में सुंदर, आकर्षक प्रतीत होकर पुरुष के समक्ष कामुक बनकर, पुरुष की काम वासना को उद्दीप्त एवं तृप्त कर सकती है लेकिन, वह स्वयं मानवी का रूप नहीं पा सकती।

मध्यकालीन सामंती समाज की अर्थव्यवस्था में नारी का धन पर कोई अधिकार नहीं था। नारी धनाभाव के कारण कंगाल, पराधीन दासी थी। धनाभाव के कारण ही नारी के अस्तित्व और अस्मिता को कुचला जाता था। संभवतः इसी कारण से नारी व्यक्ति से वस्तु रूप में परिणत होने के लिए मज़बूर थी। सीमोन दा बोउवार के अनुसार, "औरत की पहली लड़ाई अर्थ की दुनिया से शुरू होती है।"[xxxiv] स्त्री को आर्थिक क्षेत्र में अधिकार दिये जाते तो शायद मध्यकालीन समाज में उसकी इतनी दुर्गति नहीं हुई होती। "स्त्री की सामाजिक संरचना पुरुष ने ही की है। पुरुष ने ही नारी को परिभाषित किया है।"[xxxv] औरत पैदा नहीं होती औरत को पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था के द्वारा निर्मित किया जाता है।

मध्यकालीन सामंती समाज में नारियाँ वस्तु की तरह क्रय-विक्रय की जाती थी। जो लड़की या नारी जितनी ज़्यादा सुंदर होती थी उसका दाम सामंती पितृसत्तात्मक व्यवस्था की नज़रों में उतना ही अधिक होता था। पी । एन । ओझा के अनुसार, "उन दिनों दहेज का एक और रूप प्रचलित था। इसमें वरपक्ष को नहीं कन्यापक्ष को दहेज मिलता था।"[xxxvi] पति द्वारा पत्नी ख़रीदे जाने की प्रथा असामान्य नहीं थी।[xxxvii] इस युग में नारी की स्थिति यह थी कि एक बार परिणय सूत्र में आबद्ध होने के बाद उससे बाहर नहीं निकला जाता था। उच्चवर्णीय हिन्दुओं में इस बंधन को तोड़ा नहीं जा सकता था। केवल मृत्यु के क्रूर हाथ ही पति-पत्नी को एक दूसरे से अलग कर सकते थे।

तत्कालीन सामंती व्यवस्था ने नारियों को व्यक्ति से वस्तु बनाने के लिए उस पर राजमहलों के अंदर कठोर निगरानी रखते थे। मनूची के मतानुसार, "औरतों पर कड़ी निगरानी रखने का सवाल है, सभी सरदार वे ही तरीके इस्तेमाल करते हैं जो शहंशाह किया करते हैं।[xxxviii] मध्यकालीन समाज में नारी की स्थिति के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि "अधिकांश हिन्दू राजा और सरदार मुसलमान राजाओं और सरदारों की भाँति ही हरम रखते हैं पर वे आमतौर पर अपनी रखेलिनों को अपने घर में नहीं, कहीं बाहर रखते हैं।" [xxxix]

मध्यकालीन समाज की पुरुषसत्ता के समक्ष नारियों की सामाजिक दशा उपभोगपरक थी। इस काल में अनेक अन्य कारण और भी थे जो नारी को वस्तु के रूप में परिणत करते थे। पुरातनकाल की 'रति' रूपा नारी मध्यकालीन समाज में स्वच्छंदता एवं स्वाधीनता को त्यागकर, आर्थिकरूप से पराधीन होकर, विशेषकर अभिजातवर्ग की नारी काम-वस्तु बन गई थी।

IV. नारी का गरिमामय रूप (पितृसत्ताक भक्ति एवं सतीत्व रक्षार्थ जौहर की ज्वाला में प्रवेश)

मध्यकालीन सामंती शृंखलाओं में जकड़ी नारी का गरिमामय रूप वही माना जाता था जिसमें वह बंधनों की जकड़न में रहते हुए, उस व्यवस्था से मुक्त होने का प्रयत्न ना करें। जो उच्छृंखलता का प्रदर्शन नहीं करे। वह नारी जो संपूर्णतः वस्तु की - सी अस्मिता रखे; इस युग में तथाकथित गरिमामय मानी जाती थी।

विवेच्य युग की व्यवस्था में नारी की सामाजिक स्थिति यह थी कि वह पितृसत्ता में पितृसत्तात्मकता के बंधनों में एवं पतिकुल में पातिव्रत्य धर्म का पालन करे। ऐसी बंधनों की स्वामिनी को मध्यकालीन मानसिकता के समाज में श्रेष्ठ एवं गरिमामय समझा जाता था। जिस स्त्री ने अपने पति के निर्देशानुसार आचरण नहीं किया वह नारी भ्रष्टा, कुलटा और न जाने तत्कालीन समाज में किन ।किन संज्ञाओं से अभिहित की जाती थी। नारी का सामंती मानसिकता के द्वारा नियत राह से पृथक राह पर चलना, सामंती मानसिकता के द्वारा अपना अस्तित्व मिटवाना था। इस संदर्भ में उषा कँवर राठौड़ कहती हैं, "मध्यकालीन भारतीय नारी की भावनाओं को स्वप्न में भी स्वच्छंद रूप से अभिव्यक्त करने की छूट नहीं थी। उसके जीवन का सबसे बड़ा आदर्श अंधविश्वास और पराधीनता से युक्त पति भक्ति ही रह गया था।"[xl] इस तरह से इस युग में पति भक्ति और सतीत्व की गरिमा के रूप में व्यक्त किया

जाता था। राजेन्द्र यादव के अनुसार, ''नारी और पुरुष के सामंती सम्बन्ध भी औरत से अखंड़ और अविभाज्य स्वामी-भक्ति, दासता और समर्पण चाहते हैं और उसे ही महान भारतीय नारी की अद्वितीय गरिमा, औरत का उदात्तशील या सतीत्व की महिमा के रूप में गाया जाता था।"[xli]

मध्यकाल में पतिव्रत के साथ सतीव्रत का पालन करने वाली नारी को गरिमामय माना जाता था। जो नारी पति की मृत्यु के उपरांत, पति की चिता पर बैठकर अपने आपको जला डाले, वह गरिमा युक्त और जो स्त्री इस तरह से अपने सतीत्व की, अपने पतिव्रता होने की परिक्षा नहीं देती थी, वह गरिमाहीन और उसका सतीत्व खंडित माना जाता था। उस समय की मानसिकता उसे पतिव्रता भी नहीं मानती थी। इसके अतिरिक्त सती होने वाली स्त्री को समाज में विशेष गरिमा की दृष्टि से देखा जाता था। क्योंकि उस युग में नारी एक वस्तु थी। अब, वस्तु जिसका उपभोग हो चुका है उसका समाज में या व्यक्ति की निगाह में क्या काम और क्या अस्तित्व। वह वस्तु तो 'आउटडेटेड' हो चुकी थी। इसलिए उसका अस्तित्व मिट जाना ही उचित एवं सामंती मानसिकता की दृष्टि में गरिमामय माना जाता था। अगर वह सामंती समाज में जीवित रहेगी तो हो सकता है कि सामंती मानसिकता के अनुसार वासनात्मक व्यभिचार, कुत्साचार, यौनाचार फैलाये। या फिर यह भी हो सकता है कि धन, राज्य, संपत्ति में अपना अधिकार माँगने लगे। यह भी हो सकता है कि वह वैधव्योपरांत कुल मर्यादा की शृंखला को लाँघकर, घर की चारदीवारी से बाहर निकले। जैसा कि विद्रोहिणी मीरा ने किया। अतएव, उस युग की अभिजातकुल की नारी के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी वस्तुरूपी अस्मिता, पुरुषसत्ताक सामंती समाज द्वारा आयोजित जौहर की ज्वाला में जला डाले। मध्यकालीन समाज में "हिन्दू महिलाओं के जीवन में पति की मृत्यु निश्चय ही सबसे बड़ी विपत्ति रही है, एक निहायत दुःखद घटना है। हिन्दुओं में विधवाओं का पुनर्विवाह, केवल कुछ निचली जातियों को छोड़कर, अनुमत न था। विधवा को पति की मृत्यु के तुरंत बाद या तो मृत पति की चिता पर या अलग चिता पर जल जाना पड़ता था अथवा जीवन के सुखों और सम्मोहनों से विहीन, गहरे दुख, अंतहीन पीड़ा और मर्मांतक व्यथा से घुट-घुट कर जीना पड़ता था। सामान्यतः विधवाओं को महिलाओं के सभी सामाजिक एवं परंपरागत अधिकारों से वंचित रहना पड़ता था और अत्यधिक सादगी का जीवन बिताना पड़ता था जिसके साथ ही उपवास, रात्रि-जागरण और अनेक प्रतिबंध भी उन पर लगाये जाते थे। हिन्दू विधवा का जीवन उस पर लादी गई निराशा और लज्जा का था और अनेक अवसरों पर उसकी उपस्थिति तक को अशुभ और अमंगलकारी माना जाता था। इस स्थिति में अधिकांश मामलों में हिन्दू महिलाएँ समझती थी कि अपरिमित कड़वाहट और अनवरत प्रगाढ़ व्यथा से भरी ज़िन्दगी ढोने से सती होना बेहतर है। इसके अलावा परिवार की प्रतिष्ठा का भी सवाल था। लोगों के दिमाग़ में यह भावना घर कर गई थी कि सती हो जाना हिन्दू विधवा के लिए सबसे ज्यादा सम्मान की बात है और इसलिए यदि विधवा ऐसा करने में अनिच्छा प्रकट करती थी तो लोग अपने मृत पति के प्रति उसकी निष्ठा और प्रेम में संदेह करते थे।"[xlii]

मध्यकालीन समाज में सती प्रथा की कालिमा को स्पष्ट करते हुए सावित्री सिन्हा ने लिखा है, "कन्या को समाज और राष्ट्र के लिए भार बना देने का दूसरा उत्तरदायित्व सती प्रथा पर है। राजस्थान के जौहर का यह विकृत रूप उसके इतिहास में एक ऐसी गहरी कालिमा है कि मर्यादा और त्याग की चाहे जितनी गहरी सफ़ेदी हम उस पर पोतना चाहें उसका धब्बा मिट नहीं सकता। एक पुरुष की मृत्यु के साथ उसकी स्त्रियों का जीवित जल जाना नहीं अपितु जला दिया जाना यह व्यक्त करता है कि संसार में नारी उपभोग की अधिकारिणी नहीं, सामग्री बनकर आई थी।"[xliii] तत्कालीन समाज में सतीप्रथा की वीभत्सता एवं सतीप्रथा के नाम पर "हिन्दू धर्म के रक्षकों ने दूसरे देशों के सामने भारतीय स्त्रियों के त्याग और बलिदान का ढिंढोरा पीटते हुए इस प्रथा को न्यायोचित बतलाया, पर हँसते-हँसते पति के शव के साथ जल जानेवाली स्त्रियों के मानसिक बल का भेद, दाह के पहले पिलाये गये धतूरे और भंग खोल देते हैं। मद में चूर कभी हँसती, कभी रोती, अर्द्ध ।चेतन नारी सोलह शृंगार से सजी, ढोल और अन्य वाद्यों के रव के बीच चिता में प्रवेश करती थी। करुण चीत्कारों को 'वादनों' के तुमुल नाद में छिपा दिया जाता था। दृश्य की वीभत्सता को छिपाने के लिए राल इत्यादि धुआँ देने वाली वस्तुएँ डाल दी जाती थीं। इस प्रकार संसार

में साथ देने वाली सहधर्मिणी को पुरुष बलात् स्वर्ग में ले जाकर वहाँ उससे अपनी सेवा कराता था। स्थिति की यह वीभत्सता और भयंकरता उस युग की विवश नारी का इतिहास कहने के लिए यथेष्ट हैं।"[xliv]

मध्ययुगीन सामंती समाज और संस्कृति में सती प्रथा को पाप एवं रूढ़ि के रूप में नहीं देखा जाता था बल्कि, सतीप्रथा को एक पुण्य और महात्म्य के रूप में देखा जाता था। यहाँ तक की इस मध्यकाल के ही सामाजिक बुराइयों एवं रूढ़ियों पर प्रहार करने वाले संत कबीर ने भी सती की महिमा का बखान किया है। तुलसीदास ने भी सती स्त्री को सराहा है। लेकिन, उस युग की स्त्री सती प्रथा से कितना आक्रांत थी इसका प्रमाण तत्कालीन कवयित्री मीरा की रचनाधर्मिता में सती न होस्याँ की अनुगूँज है। अतः मध्यकालीन सामंती समाज और संस्कृति में नारी का गरिमामय रूप वह था जो सामंती मानसिकता के द्वारा निर्धारित आचरणों का पालन करे और वस्तु के रूप में उपभोग्य पतिव्रता हो एवं सतीत्व की महिमा का गुणगान करती हुई जौहर-ज्वाला में अपनी वस्तुरूपी अस्मिता एवं अस्तित्व को भस्मीभूत कर दे।

V. सामंती पितृसत्ताक व्यवस्था से नारी की मुक्ति : परिणति सामंती निर्वाण अथवा वैश्या

मध्यकालीन सामाजिक व्यवस्था में नारी निज अस्तित्व और अस्मिता के लिए या फिर अन्य कारणों से अभिजातकुल की अर्गला को तोड़कर मुक्त होना चाहती थी तो समाज के रक्षक या पोषक नारी को व्यवस्था की सीमाओं से मुक्त होने नहीं देते थे। सावित्री सिन्हा लिखती हैं, "स्त्रियों का जीवन दीवारों से घिर गया, विधवाएं जीवित जलाई जाने लगीं और स्त्रियों की भाग्यरेखा पूर्णतया धूमिल पड़ गई।"[xlv] सामंती व्यवस्था नारी के साथ अमानवीय कृत्य करने लगी। सामंती पितृसत्ताक व्यवस्था नारी को पुरोहितवादी सामंती सत्ता के द्वारा निर्धारित धर्म कर्म की शृंखला में क़ैद करके रखती थी। इन धर्म के ठेकेदारों ने स्त्री की अस्मिता को मिटाने के लिए, धर्म के नाम पर बारह वर्ष से अधिक आयु की कन्या का विवाह शास्त्र विरुद्ध कर दिया।[xlvi] पितृसत्ता और पुरुषसत्ता धर्म का सहारा लेकर नारी पर प्रतिबंध लगाती थी। नारी के अस्तित्व की सारी अर्थवत्ता पुरुषसत्ता निर्धारित करती आई है। इस संदर्भ में प्रभा खेतान सम्मति देती हैं, "स्त्री का अपना होना और उस होने की प्रक्रिया की सारी अर्थवत्ता अब तक पितृसत्ता निर्धारित करती आई है। चूँकि कोई दूसरा यानी पुरुष जाति उसका निर्धारण करती है इसलिए स्त्री की अपनी स्वायत्तता नहीं रहती। उसका वस्तुकरण हो जाता है।"[xlvii] राजस्थान के मारवाड़ी समाज में स्त्री की स्थिति के संदर्भ में प्रभा खेतान कहती हैं, "हम जैसे मारवाड़ी बुर्जुवा परिवार तो और भी अधिक आतंकित रहते हैं। हमारे पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्र में तो क्रांति और विद्रोह का एक शब्द भी, उच्चरित करना भयानक अपराध था।"[xlviii] मध्यकालीन सामंती व्यवस्था नारी को-विशेषतः उच्च वर्ग की नारी को-घर से बाहर निकलने की आज्ञा नहीं दे सकती थी।[xlix] तत्कालीन सामंती समाज की शंृखलाओं के बंधन से जो नारी बाहर निकलती थी उसे 'आवारा' और निर्लज्ज कहा जाता था। तत्कालीन व्यवस्था नारी को घर से बाहर नहीं निकलने देने एवं उच्छृंखल नहीं होने के लिए, पुरोहितों द्वारा निर्धारित मनु के विचारों के अनुसार कम उम्र की लड़की की शादी प्रौढ़ अवस्था के पुरुष के साथ करने की प्रथा को अपनाया। पुरुषवर्ग राजमहल के अंतःपुर की नारियों पर निगरानी रखने के लिए व्यवस्था करता था। इस प्रतिबंधात्मक समाज में नारियों को जनसमाज की जानकारी से बेख़बर रखा जाता था। औरतों की भीड़ में कम प्यार पाने वाली रानियों की उच्छृंखलता को दबाकर, उनके अस्तित्व को कुचला जाता था।

पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था में जो औरत वैधव्य ग्रहण करने के पश्चात् सती नहीं होती है उसके सिर के बाल मूँड़ दिये जाते थे। विलियम फिंच के अनुसार, "जब पति मर जाता है उस समय यदि उसकी पत्नी जीवित रही तो उसी के साथ जला दी जाती है और यदि उसने ऐसा नहीं किया तो उसका सर मूंड़ दिया जाता है।"[l] यही नहीं, स्त्री अगर इस व्यवस्था के बंधन से वैधव्य होने के बाद भी बाहर निकलती है और राजमहलों से नाता तोड़ भी देती है तो भी सामंती पुरुषसत्ता अपने आत्मसम्मान की रक्षार्थ उसका अस्तित्व मिटा देती थी।

यदि अभिजातवर्ग की नारी परिवार के बंधनों से बाहर निकल आती थी तो सामंती समाज की व्यवस्था द्वारा उसको अस्तित्वहीन

कर दिया जाता था। अन्यथा यह सामंती समाज एवं संस्कृति की व्यवस्था उसको वेश्या बनने पर मजबूर कर देती थी। अभिजातकुल की नारी को जनसमाज में रहने नहीं दिया जाता था। मध्यकालीन वेश्या समाज में जो औरतें आती थीं उसके संदर्भ में पी । एन । ओझा कहते हैं, ''सार्वजनिक औरतों या वेश्याओं के निवास के लिए एक अलग-थलग क्षेत्र तय कर दिया जाता था और बादशाह ज़ोर देता था कि सभी बदनाम औरतें उसी क्षेत्र में रहने के लिए भेज दी जायें।"[li] ये बदनाम औरतें अधिकांशतः अंतःपुर की बदनाम औरतें ही होती थी। जो उस सामंती कारा से बाहर आकर पुरुषसत्तात्मक की दृष्टि में उच्छृंखलता प्रदर्शित करती थी। इन वेश्याओं में समाज की वे नारियाँ भी होती थीं जो पुरुषसत्ता की दृष्टि में पापपंक में लिप्त हो चुकी थीं।

इस प्रकार सामंती मनोवृत्ति और नैतिकता सामंती पुरुषसत्तात्मक समाज से मुक्त होने वाली नारी के प्रति सामंती रुख़ अपनाती थी। सामंती कारा से निकली नारी यदि वापिस राजमहलों में पहुँचती थी तो उसको एकाकी कष्टमय जीवन यापन करना पड़ता था। यदि वह नारी वापिस उस समाज, संस्कृति और सभ्यता में नहीं पहुंचती थी तो व्यवस्था के रक्षक ठेकेदार उसको येन केन प्रकारेण सामंती निर्वाण प्रदान करते थे। सामंती निर्वाण से बची उच्छृंखल नारी को व्यवस्था चरित्रहीन घोषित कर वेश्या के रूप में परिणत कर देती थी। संभवतः सामंती समाज की लोकलाज को तजने वाली मीरा का ऐसा ही सामंती निर्वाण हुआ था। भारतीय इतिहासों, पुराणों में पुरुष व्यवस्था के रक्षकों ने इसी प्रकार के कृत्यों के द्वारा अहिल्या, रेणुका और सीता को दंडित किया था।

VI. निष्कर्ष

मध्यकालीन सामंती, समाज और संस्कृति में अंततः नारी की स्थिति दयनीय थी। सामंती पुरुषसत्ता नारी की अस्मिता एवं अस्तित्व को नकारकर उसे वस्तु रूप प्रदान करता थी। अधिकारविहीना उस युग में उपभोगपरक सामग्री बन गई। व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाली नारी को उस युग में कुचला जाता था। सतीत्व और जौहर की ज्वाला में जलाकर उसकी जिजीविषा का अंत किया जाता था। नारी दासी थी। ''सामंती समाज में औरतें चमगादड़ों या उल्लुओं की तरह जिंदा रहती हैं; पशुओं की तरह खटती हैं और केंचुओं की तरह मरती हैं।"[lii]

संदर्भ

[i] आदमी की निगाह में औरत, राजेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृ । 172

[ii] मनुस्मृति, (सं ।) चमनलाल गौतम, संस्कृति संस्थान, बरेली, 2000, पृ । 195

[iii] वही, पृ । 195

[iv] वही, पृ । 195

[v] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, सावित्री सिन्हा, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1953, पृ । 44

[vi] उर्वशी, रामधारीसिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999, पृ । 25

[vii] मीरा का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1998, पृ । 43

[viii] मुगलकालीन भारत का सामाजिक जीवन, पी । एन । ओझा, क्लासिकल पब्लिशिंग हाउसए दिल्ली, 1984, पृ 111

[ix] वही, पृ 115

[x] वही, पृ । 115

[xi] स्टोरियो ।2, पृ । 352,

[xii] मुगलकालीन भारत का सामाजिक जीवन, पी । एन । ओझा, पृ । 115

[xiii] मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, उषा कँवर राठौड़, महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाशन शोध केंद्र, जोधपुर, 2002, पृ । 41

[xiv] भारतीय नारी: अस्मिता की पहचान, उमा शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1994, पृ । 14

[xv] मनुस्मृति, 9 94, पृ । 344

[xvi] मध्यकालीन हिन्दी काव्य, उषारानी, अष्टम प्रकाशन, दिल्ली, 1997, पृ। 8

[xvii] मुग़लकालीन भारत का सामाजिक जीवन, पी। एन। ओझा, पृ। 105

[xviii] वही, पृ। 105

[xix] मुग़लकालीन भारत का सामाजिक जीवन, पी। एन। ओझा, पृ। 104

[xx] मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति (एक झलक), युसुफ खान, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, 1956, पृ। 122

[xxi] मेवाड़ संस्कृति और परम्परा, धर्मपाल शर्मा, प्रताप शोध प्रतिष्ठान, उदयपुर, 1999, पृ। 74

[xxii] बीकानेर री ख्यात, महाराजा सुजानसिंघजी सुं महाराजा गजसिंह तांई, अ। सं। पु। बीकानेर, पृ। 056

[xxiii] मारवाड़ का सामाजिक इतिहास एवं आर्थिक जीवन, प्रेम ऐंग्रिस, उषा पब्लिशिंग हाउस, जोधपुर,1991, पृ। 85

[xxiv] मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, उषा कँवर राठौड़, पृ। 06

[xxv] वही, पृ। 48

[xxvi] इण्डियन ट्रेवल्स, सुरेन्द्रनाथ सेन, नेशनल आर्काइव्स आॅफ इंडिया, दिल्ली, 1949, पृ। 255

[xxvii] मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, उषा कँवर राठौड़, पृ। 35

[xxviii] मुग़लकालीन भारत का सामाजिक जीवन, पी। एन। ओझा, पृ। 104

[xxix] मीरा का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ। 20

[xxx] हंस (मासिक पत्रिका), मार्च 2001, पृ। 20

[xxxi] मीरा का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ। 44

[xxxii] द एंपायर आॅफ दी ग्रेट मुग़ल, होयलैंड, जे। एस।, इदारह।1 अदबियत, दिल्ली, 1975, पृ। 90, 91

[xxxiii] जहांगीर्स इंडिया, पृ। 64, मुग़लकालीन भारत का सामाजिक जीवन, पी। एन। ओझा, पृ। 108

[xxxiv] स्त्री: उपेक्षिता (the Second Sex), सीमोन दा बोउवार, हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली, 2004, पृ। 12

[xxxv] हंस (मासिक पत्रिका), मार्च 2001, पृ। 10

[xxxvi] मुग़लकालीन भारत का सामाजिक जीवन, पी। एन। ओझा, पृ। 109

[xxxvii] स्टीरिया, 3, पृ। 55, मुग़लकालीन भारत का सामाजिक जीवन, पी। एन। ओझा, पृ। 108

[xxxviii] स्टीरिया, 3, पृ। 55, मुग़लकालीन भारत का सामाजिक जीवन, पी। एन। ओझा, पृ। 109

[xxxix] हिस्ट्री आफ़ औरंग़जेब, भाग।2, जदुनाथ सरकार, एम। सी। सरकार, कलकत्ता, 1977, पृ। 459

[xl] मध्यकालीन कवयित्रियों की काव्य साधना, उषा कँवर राठौड़, पृ। 41

[xli] आदमी की निगाह में औरत, राजेन्द्र यादव, पृ। 118

[xlii] मुग़लकालीन भारत का सामाजिक जीवन, पी। एन। ओझा, पृ। 117

[xliii] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, सावित्री सिन्हा, पृ। 44

[xliv] वही, पृ। 44, 45

[xlv] मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, सावित्री सिन्हा, पृ। 19

[xlvi] वही, पृ। 44

[xlvii] हंस (मासिक पत्रिका), पृ। 09

[xlviii] वही, पृ। 07

[xlix] मीरा का काव्य ,विश्वनाथ त्रिपाठी, पृ। 20

[l] अर्ली ट्रेवल्स इन इंडिया, फोस्टर्स, पृ। 14, 17, 22

[li] मुग़लकालीन भारत का सामाजिक जीवन, पी। एन। ओझा, पृ। 121

[lii] अपना कमरा, वर्जीनिया वुल्फ, संवाद प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृ। 62